P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-12* (Part-2) March- 2019
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

'वक्त भी हैरान है' काव्य संग्रह की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता

उमा जांगिड़
शोधार्थी
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
भगवंत विश्वविद्यालय,
सीकर रोड़, अजमेर,
राजस्थान, भारत

एजाज अहमद कादरी
एसोसिएट प्राफेसर,
हिन्दी विभाग,
राजकीय डूंगर महाविद्यालय,
बीकानेर, राजस्थान, भारत

शिवानी शर्मा
एसोसिएट प्राफेसर,
हिन्दी विभाग,
भगवंत विश्वविद्यालय,
सीकर रोड़, अजमेर,
राजस्थान, भारत

सारांश

बहुमुखी प्रतिभा के धनी कवि व लेखक डॉ. मदन केवलिया का काव्य संसार बहुविध होने के साथ ही सामाजिक सरोकारों को वास्तविकता में पिरोता हुआ साहित्य सृजन करता है। उनका काव्य संग्रह 'वक्त भी हैरान है' में समाज की प्रत्येक परिस्थिति, विषमता, एकाकीपन, व्यंग्य तथा मानव अंतर्मन की व्यथा को उजागर करता है।

साहित्य की प्रत्येक विधा में उन्होंने अपनी लेखनी चलाई है। उनके काव्यसंग्रह 'वक्त भी हैरान है' में गजलें और कविताएं हैं जिसमें उनकी 'कील' कविता जिंदगी की फलसफे को कुछ इस तरह से बयान करती है –

"जिंदगी गड़ रही है इक कील की तरह।
उपेक्षित हैं हम, इसी झील की तरह।
खानाबदोश हो गए इस दिल के वास्ते।
जीवन गुजारते हैं इक भील की तरह।।
दी उम्र पूरी झोंक कलम हाथ में लिये
इसको नहीं समझते, संगे मील की तरह।"[1]

प्रत्येक लेखक के लिए समाज उस आईने की तरह है जिसे देखकर वह अनुमान लगा लेता है कि क्या अच्छा और क्या बुरा है? हालांकि आईने का अक्स भले ही उल्टा हो फिर भी वह यथार्थ को बयां करता है और लेखक की यही रजा रहती है कि वह अपने शब्दों को इस तरह से अंकित करे कि पाठक के मन पर वो सीधा छप जाए और वह उन शब्दों को महसूस कर सके।

मुख्य शब्द : दुःख, अन्तर्मन, उदासीनता, अभिव्यंजना, सद्भावना, समसामयिक जीवन, मनोव्यथा।

प्रस्तावना

डॉ. केवलिया ने अपने काव्य में संसार की प्रत्येक छवि को अंकित किया है जिसमें से 'प्रकृति' भी एक है। प्रकृति संसार की अनुपम सृष्टि है जिसके बीच जीवन पनपता है और उस जीवन के लिए उपयोगी प्रत्येक वस्तु उसी पावन प्रकृति की उपज है। इस प्रकार प्रकृति व मानव का सम्बन्ध अटूट है। इसी धारणा को मानते हुए डॉ. केवलिया ने समाज से ही लेखन को जोड़ा है। प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण भी कवि ने अपनी रचनाओं में किया है। एक विम्बचित्र देखिए –

सूर्य की किरणें परिक्रमा कर रही थी
उस खण्डहर के टूटे मकान में।।

इस प्रकार वैचारिक क्षमता बड़ी ही अद्भुत और प्रशंसा योग्य है।

अध्ययन के उद्देश्य

इस काव्य संग्रह में कवि अपने मनोभावों तथा समाज से प्राप्त अनुभवों को शब्दों में साकार किया है। उनका उद्देश्य रहा है कि प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह कैसी भी परिस्थिति में जीवन की सच्चाई से भागे नहीं बल्कि यथार्थ का सामना करे।

जीवन के दुःख संत्रास, कुण्ठा तथा उदासीनता को अपने काव्य में व्यक्त किया है तथा मानव को उस परिस्थिति में सम्बल भी प्रदान किया है।

डॉ. केवलिया ने गजल के माध्यम से जीवन के उद्देश्यों को सकारात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है –

"अब तो मत नादानी कर
जीवन–चंदन पानी कर
जिस मंजिल पर जाना हो
उसकी सिर्फ बयानी कर।।"[2]

डॉ. मदन केवलिया एक प्रबुद्ध साहित्यकार, सुलझे हुए कवि, संवेदनशील कथाकार, धारदार व्यंग्यकार होने के साथ–साथ वे गरिमामय तथा वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप रचना साहित्य के पुरोधा हैं। उनका व्यक्तित्व शब्दों का मोहताज नहीं है क्योंकि उनका साहित्य सब बयां कर देता है।

डॉ. मदन केवलिया का जन्म (विद्यालय प्रमाण–पत्र के अनुसार) 15 जनवरी, 1935 को डेरा इस्माइल खां (सीमा प्रांत–पाकिस्तान) में हुआ। वैसे उनकी माताजी के अनुसार उनका जन्म 1 जनवरी को हुआ था अतः उनके बंधु–बांधव 1 जनवरी को ही उन्हें आशीर्वाद व बधाई देते हैं। पिता श्री पं. हीरालाल तथा माता श्रीमती पार्वती देवी के साथ परिवार में चार भाइयों तथा सात बहिनों के विशाल परिवार में पले–बढ़े डॉ. केवलिया ने अपनी जीवनयात्रा प्रारम्भ की।

डॉ. मदन केवलिया की प्रारम्भिक शिक्षा डेरा इस्माइल खां, सुखधाम स्कूल, खालसा स्कूल तथा वी.बी. स्कूल में कक्षा 6 तक हुई। भारत–पाकिस्तान विभाजन की त्रासदी के कारण उन्हें बीकानेर आना पड़ा। यहाँ आकर उन्होंने फोर्ट स्कूल, रापुरिया इंटर कॉलेज तथा डूंगर कॉलेज से एम.ए. (हिन्दी) में किया। बी.एड. टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज से किया। प्रो. मोहन वल्लभ पंत के निर्देशन में 'हिन्दी खण्डकाव्य एक अध्ययन' विषय पर पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्या नगर (गुजरात) में कुछ समय व्याख्याता पद पर रहे, फिर जुलाई, 1952 से मई, 1962 तक राजकीय महाविद्यालय, डीडवाना में कार्य किया। उसके बाद 10 जुलाई, 1962 से सेवानिवृत्ति (30 जून, 1993) तक डूंगर कॉलेज में विभिन्न पदों पर कार्य किया।

इस प्रकार डॉ. केवलिया बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी तो है ही इसके साथ ही बहुभाषी भी हैं जो इनकी साहित्य रचना में बखूबी झलकता है। इनके काव्य सम्बन्धी विचार इस प्रकार हैं –

1. 'कविता मानव इतिहास के साथ जुड़ी हुई है। आदिम अवस्था से ही मनुष्य–चेतना के साथ–साथ कविता की भी प्रगति हुई है।'[3]
2. 'समकालीन कविता मानव विरोधी स्थितियों को तल्खी के साथ व्यक्त ही नहीं करती, अपितु उसके लिए कोई समाधान ढूंढ़ने की कोशिश भी करती है। उसमें आत्म–चिंतन कम है, जनचिंतन ही ज्यादा है।'[4]
3. समकालीन कविता में अस्वीकार का स्वर भी है। कवियों को लगता है कि कोरे आदर्श अब बेमानी हो गए हैं। विज्ञान, यांत्रित सभ्यता, राजनीतिक आपाधापी ने सभी प्रसंगों पर विचार–चिह्न लगा दिए हैं।[5]
4. 'कविता की अनुभूति स्नेह में डूबी हुई जीवन की वह दीपशिखा है जो कभी चुकने वाली नहीं है, क्योंकि अनुभूति–स्नेह तो किसी न किसी रूप में बराबर बना रहेगा। जब जीवन नहीं चुकता तो कविता की इति कैसे हो सकती है? तात्कालिक प्रभाव उसे थोड़ी देर के लिए धूमिल कर सकता है, पर सदा के लिए नहीं।'[6]

इस प्रकार डॉ. केवलिया के अनुसार – "जहां कविता अनुभूति–स्नेह का विषय है, वहीं वह (कविता) इतिहास से भी जुड़ी हुई है। कविता चिंतन का भी विषय है और सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न भी लगाती है। कविता वास्तविक रूप में जीवन की अनुभूतियों की शब्दमय गेय अभिव्यक्ति है।"

डॉ. केवलिया का काव्य संग्रह 'वक्त भी हैरान है' अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ, किन्तु इनके अप्रकाशित काव्य संग्रह पर भी उन्हें माणकचंद प्रदीपकुमार रामपुरिया चैरिटेबल ट्रस्ट, कोलकाता की ओर से 'शब्द ऋषि' पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

'वक्त भी हैरान है' काव्य संग्रह के प्रथम खण्ड में 62 गीत व नवगीत हैं और दूसरे खण्ड में गजले और कविताएं हैं। इसकी भूमिका में डॉ. केवलिया ने लिखा है – "वैसे मैं काव्य के सभी रूपों में लिखता रहा हूँ, किन्तु नवगीत मेरा प्रिय काव्य–रूप है, इसमें ही अपने जीवन के विविध मोड़ों को अग्रसर होता पाता हूँ।"[7]

डॉ. केवलिया ने अपने काव्य संग्रह 'वक्त भी हैरान है' के दो खण्डों में जहाँ दुःख, कुण्ठा, उदासीनता, एकाकीपन, पीड़ा, तनाव, स्वार्थ जैसी मानवीय संवेदना को बखूबी अपनी कलम के माध्यम से शब्दबद्ध किया है, वहीं जीवन की विसंगतियों, जीवन संघर्ष के साथ–साथ जिजीविषा के स्वर को भी बुलंद किया है। कविता वास्तव में कवि की अपनी आत्मिक अनुभूति होती है जिसे वह सामाजिक नजरिए से देखता हुआ पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है।

दुःख, वेदना और एकाकीपन

डॉ. केवलिया की अनेक कविताओं का स्वर दुःख और निराशा से ओतप्रोत रहा है और उन्होंने स्वयं को जीवन व जगत की हलचलों के बीच स्वयं को अकेला ही महसूस किया है।

"अपनी जीवन दृष्टि को व्यक्त करते हुए डॉ. केवलिया लिखते हैं कि जिंदगी कई बार बहुत बेरहम नजर आती है, क्योंकि जीने के नाम पर तो पेड़–पौधे भी जीते हैं। हाथ से छूट जाने वाली पतंग की डोर की भांति जिंदगी हाथ से फिसलती नजर आती है।"[8]

डॉ. केवलिया ने लिखा था –

"फर्श पर गिरा चपड़ी के निशान–सा
अकेलापन चिपटा है, अणु–परमाणु में।"[9]

जगदीश चतुर्वेदी लिखते हैं – "आज कविता बिम्ब–योजना, अर्थ की लय या स्वयं के साक्षात्कार की काव्य रूढ़ियों से इतर कवित के अपने आंतरिक सत्य व उसकी अस्मिता के सक्रिय क्रियाशील अन्वेषण की उपज है। हम जिस दोहरी जिंदगी को जी रहे हैं, जिस यांत्रिक जीवन ऊब से संत्रस्त है, जिस भीड़ के बीच अकेलेपन का अहसास लेकर हम अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत हैं, उसका अहसास अतीन्द्रीय, रागात्मक, योगासीन मुद्रा में परम्परावादी कवियों को नहीं हो सकता है, न ही इसकी कचोट सृजनरत होने के लिए बाध्य ही कर सकती है।"[10]

'बिखरना' कविता में कवि ने अपने अंतर्मन की व्यथा को व्यक्त करते हुए लिखा है –

"जड़ने की कोशिश में
रह–रह कर बिखर जाता हूँ

जब भी कभी घूमने निकलता हूँ
रास्ते में मिलते है, सिर छुपाने के लिए
चीखते पक्षियों के टूटे डैने
मीलों फैले रेत के समंदर के
टूटे कूल–किनारे
पुराने कलैण्डर से उपेक्षित
अभिसार–स्थल
तो सम्भावना की ऊष्मा के अभाव में
सिहर जाता हूँ।"[11]

इस कविता के माध्यम से जहाँ कवि ने अकेलेपन को वाणी दी है, वहीं उन्होंने एक उम्मीद, एक आशा की किरण के साथ जोड़ने की सम्भावना भी व्यक्त की है।

वेदना, पीड़ा, संत्रास और तनाव

पीड़ा, तनाव और संत्रास तीनों ही मन के दुःख को व्यक्त करने वाले मनोभाव हैं। इन भावों को शब्दबद्ध करना आसान नहीं है, परन्तु एक कवि, लेखक अपनी अनुभूतियों को कविता के रूप में बड़ी सरलता से व्यक्त करते हुए शब्दों को लयबद्ध कर देता है, फिर वे मनोभाव चाहे खुशी के या दुःख के।

'संत्रास' कविता के माध्यम से कवि ने अपनी मनोव्यथा कहते हुए जीवन की परिवर्तनशीलता को नये–नये उपमानों के माध्यम से व्यक्त किया है –

"पुराने अखबार सी जिंदगी
अब रद्दी लगती है।
गुमनाम इरादों का संत्रास
जुर्म की कारा में ली गई सांस
वक्त की अदालत में जो
अब भद्दी लगती है।"[12]

कुण्ठा और उदासीनता

जीवन सुख–दुःख का मेला है, जो अनवरत चलता तो रहता है, पर इसमें अलग–अलग पड़ाव आते रहते हैं। जो व्यक्ति जीवन के अनुसार उसमें रम जाता है उसकी जिंदगी हसीन ख्वाब से कम नहीं होती है पर जो उसमें निराशा का दामन थाम लेता है, वह उदासीनता की ओर बढ़ने लगता है और कुण्ठा का शिकार हो जाता है।

डॉ. केवलिया के अनुसार आज का मानव भावना शून्य हो गया है और चारों ओर छल–कपट का साम्राज्य है। यही भाव उनकी 'चेहरा' कविता में व्यक्त हुआ है –

"चेहरा अपना
कितनी बार बदल लिया
कितना भी भटका हूँ मैं बेनाम लम्हों में
रोशनी के टुकड़ों के लिए अंधी गलियों में
चाहत के चित्रों को, सपनों की कीलों से जड़
के भी देख लिया।"[13]

उदासीनता का ऐसा स्वर डॉ. केवलिया की 'मन का व्यापार', 'गंध','सन्नाटा', 'कागजों की लाशें', 'अहसान', 'निश्वास', 'कितने अंधेरे', 'दिल', 'बंद रोशनी', 'संवरता नहीं' आदि कविताओं में देखा जा सकता है। 'दिल' कविता में उन्होंने बोझिल जीवन की उदासी को इस प्रकार व्यक्त किया है कि हृदय चित्कार कर रहा हो –

"दिल नहीं
दिन भी उदास है।।
सांस रोके हवा गुजरती है
बोझिल गगन, बेताब धरती है
सबने ओढ़ा, गम का लिबास है।।
कुचला जाता, सड़कों को शव है
चीखते सब, हिलता न लब है
आज सब, अपने ही दास हैं।।"[13]

आधुनिक परिवेश

पुरानी जीवन–शैली बदल रही है और आधुनिकता तेजी से अपने पांव पसार रही है। सम्बन्धों का जुड़ाव निरन्तर टूटता नजर आ रहा है। रिश्तों में आत्मीयता मरती दिख रही है। हर चीज की महत्ता सिर्फ एक जरूरत बनकर रह गई है। हर एक चेहरा बदला हुआ सा नजर आ रहा है और आत्मीयता कहीं खो सी गई है और प्रत्येक मनुष्य स्वार्थी हो गया है जिसके कारण रिश्ते हाथ से छूटते नजर आ रहे हैं।

डॉ. केवलिया की 'जिजीविषा' कविता की सर्वाधिक चर्चा हुई है, जिनमें कवि जीवन की राहें ढूंढ़ता नजर आ रहा है। वक्त कभी एक सा नहीं रहता, इसमें उतार–चढ़ाव आते ही रहते हैं, जैसे कभी खुशी कभी गम, कभी चिड़चिड़ाहट तो कभी मस्तियां इसीलिए वक्त को बलवान की उपमा दी जाती है। इसी संदर्भ में कवि लिखते हैं –

"वक्त के हिमखण्डों को फिसलने से
तो नहीं रोक पाया
पर हर खतरे से जिंदगी को सजाया
और मुमूर्षा पर मुस्कुराया।"

डॉ. केवलिया ने समसामयिक जीवन का चित्रण भी बड़ी सरलता से किया है। इनकी 'मुखौटे' कविता इसी संदर्भ में है जिसमें मानव के चेहरे पर चेहरे की दास्तां बयां की गई है। साथ ही साथ विविध उपमानों के साथ इसकी बहुत मनोरम अभिव्यक्ति हुई है –

"मुखौटे की हेराफेरी में
जिन्होंने सबसे अधिक विनिमय किया है,
जीता है।
फिर भी परिधान की चकाचौंध में
जिन्होंने सबसे उपहार लिया है,
जीता है।"[14]

जिंदगी की ऊब को डॉ. केवलिया ने बड़ी सहजता के साथ व्यक्त करते हुए उसे विविध उपमानों से शब्दबद्ध किया है –

"जिंदगी अब
उगलती है जहर
अमृत सी श्वासों को, घुन लगा है
चांदनी रातों को, गम ने डसा है
टूट जाए यह धागा, जाने किस प्रहर.....?"[15]

हास्य व्यंग्य

"व्यंग्य एक विशेष प्रकार की अभिव्यंजना है। यह एक साहित्यिक हथियार है जो गुलाब की परतों में लपेट कर चलाया जाता है। व्यंग्य की चोट गहरी होती है जिसे सहज भुलाया नहीं जा सकता है..... जीवन में बढ़ती असंगतियां और असंतुलन संवेदनशील व्यक्ति को चिंतन के लिए प्रेरित करते हैं और यही चिंतन व्यंग्य को जन्म

देता है इसीलिए व्यंग्य को 'रूढ़िग्रस्त जर्जर सामाजिकता के प्रति जीवंत आक्रोश' कहा गया है।"[16]

जैसा कि कवि बिहारी के लिए कहा गया है –

"सतसईया के दोहरे, ज्यों नाविक के तीर।
देखन में छोटे लगे, घाव करे गम्भीर।।"

डॉ. केवलिया की धारणा है कि "हंसना–हंसाना मानव जीवन की प्रमुख प्रवृत्ति है। स्वस्थ हास्य जहाँ व्यक्ति के निजी जीवन में विटामिन का काम करता है, वहाँ सामाजिक दृष्टि से रोगी व्यक्ति के लिए भी उपयोगी है।"[17]

जीवन की डोर बड़ी महीन है जो कब टूट जाए पता नहीं चलता है। आजकल का दौर वैसे भी दौड़–भाग का है जहाँ व्यक्ति एक रेसलर की भांति हो गया है। इसीलिए इस जिंदगी में थोड़े फुर्सत के पल भी निकालिए जो आपके बेजान मन को थोड़ी हंसीरूपी ऑक्सीजन प्रदान कर उसे प्रफुल्लित करे।

डॉ. केवलिया की कलम व्यंग्य की धार पर बड़ी सहजता से चली है। बीकानेर के खान–पान की परिपाटी को देखते हुए उन्होंने 'जीमण प्रतियोगिता' कविता लिखी जो कि काफी लोकप्रिय हुई –

"यदि ओलम्पिक में रखी जाती जीमण प्रतियोगिता
तो भारत को कोई हरा नहीं सकता
गर मिठाई खाने का कम्पीटिशन हुआ तो
भारत सबके छक्के छुड़ाएगा
सिर्फ रबड़ी प्रतियोगिता में ही
बीकानेर गोल्ड मेडल ले जाएगा।"[18]

डॉ. केवलिया की व्यंग्य परिपाटी अत्यन्त ही सरलता और सहजता से अद्‌भुत बन पड़ी है। इसी दृष्टि से इनकी 'जब कभी' कविता सर्वाधिक लोकप्रिय हुई है जिसमें कवि ने अपने अन्तर्द्वन्द और आज की नाटकीय दुनिया पर विचार करते हुए सामाजिक परिवेश पर करारा व्यंग्य किया है। एक अध्यापक की स्थिति देखिए –

"जब कभी विद्यार्थियों द्वारा
किए गए आदमखोर अपमान से
भीतर ही भीतर सुलगना शुरू करता हूँ
तो कर्ज में डूबी सांसों का उखड़ना सह नहीं पाता,
उस समय चापलूसी के स्टीरियो से
उन्हें रिझाने की कोशिश में जुट जाता हूँ।"[19]

रूबाइयां

डॉ. केवलिया की रूबाइयों में भी व्यंग्य का स्वर प्रमुख है। इनमें शहीदों के प्रति श्रद्धांजलि, आतंकवाद, विभिन्न पर्व, जीवन संघर्ष आदि विविध विषयों पर अपनी लेखनी चलायी है। बीकानेर की साम्प्रदायिक सद्‌भावना पर लिखी डॉ. केवलिया की यह रूबाई पाठक को भाव–विभोर कर देती है। –

"निगलकर उजाले मचा है अंधेर
कर्फ्यू कहीं है व मचा है ढेर
हिन्दू मुसलमां सिक्खों के दिलों का
मिलना देखना हो, देखो बीकानेर।।"[20]

कला पक्ष

डॉ. केवलिया के काव्य के भावपक्ष ने जहाँ हमें जीवन की अनुभूतियों और विसंगतियों से रूबरू कराया है, वहीं दूसरी तरफ उनका कलापक्ष भी अत्यन्त समृद्ध और नवीनता लिए हुए हैं। डॉ. केवलिया की कविताओं में अनुभूति पक्ष की भांति अभिव्यक्ति पक्ष की शुद्धि व शक्ति दृष्टिगत होती है। इनके काव्य में उर्दू, अंग्रेजी, राजस्थानी व ब्रज के शब्द भी मिलते हैं। देखिए –

1. आत्मीयता मर गयी है
   बातें हैं धंधों की
2. "स्नेह पग रुके, बस देखे ज्यों बंद गेट।"[21]
3. "जैसे किसी ने भीतर डायनामाइट लगा दिए हैं"[22]

व्यंजना शक्ति

डॉ. केवलिया मूलतः व्यंग्य कवि हैं। इसलिए व्यंजना शक्ति इन्हें अतिप्रिय है, इनकी कविताओं में व्यंजना शक्ति समग्रता से व्याप्त है।

"मैं ईमानदार हूँ क्योंकि
इसके सिवाय कोई सहारा नहीं है
वर्ना आज की रंगबिरंगी दुनिया में
मुझ जैसा कोई बेचारा नहीं है।"

प्रतीक और बिम्ब

डॉ. केवलिया अपने इस काव्य संग्रह में नए–नए प्रतीक और बिम्बों को नए–नए रूपों में उपमित किया है–

"जब कभी रात के सन्नाटे को
गोली की तरह चीरती हुई
निकट के सरकारी या सहकारी भवनों में होने वाले
कवि सम्मेलनों की आवाजें
पलकों में कैक्टस उगाने लगती है।"[23]

निष्कर्ष

समष्टि रूप में हम इनके काव्य संग्रह 'वक्त भी हैरान है' के प्रयुक्त दोनों खण्डों (प्रथम – फ्रिज से भी ठण्डे सम्बन्धा तथा द्वितीय – जब कभी) की कविताओं का विश्लेषण करने पश्चात् सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि काव्य संग्रह में समसामयिकता तो व्यक्त हुई है, इसके साथ ही जीवन की प्रत्येक परिस्थिति का जीवन्त चित्रण और आदर्शवादिता का स्वर भी अत्यन्त नम्यता से व्यक्त हुआ है।

डॉ. केवलिया के शब्दों में –

"साधना सागर की मैं खोई लहर हूँ।
जो कभी तो अपनी मंजिल पा सकेगी।।"

इस प्रकार डॉ. मदन केवलिया शब्दों के जादूगर कहे जा सकते हैं, जिन्होंने अपने काव्य संग्रह 'वक्त भी हैरान है' में इन्हीं शब्दों का जादू दिखाया है और जीवन को एक सकारात्मक दृष्टि से देखने का मंत्र भी दिया है। जीवन एक ऐसी अन्तर्धारा है जो अपने साथ मानव जीवन के हर पहलू को अपनी लहरों के अनुसार किनारे (मंजिल) लगा देती है।

अंत टिप्पणी

1. *'वक्त भी हैरान है' काव्य संग्रह, जब कभी (दूसरा खण्ड), कील कविता, डॉ. मदन केवलिया, पृ. 32*
2. *मधुमती, मार्च, 2006, पृ. 18*
3. *'काव्य प्रतिमाएं', सं. डॉ. केवलिया, पृ. 1*
4. *'साहित्य की प्रतिबद्धता और सरोकार', सं. प्रकाश आतुर, पृ. 172*
5. *'साहित्य की प्रतिबद्धता और सरोकार', सं. प्रकाश आतुर, पृ. 173*

6. *'डॉ. मदन केवलिया : समकालीन काव्य संसार', नया शिक्षक, दिसम्बर, 1972*
7. *'वक्त भी हैरान है', पुरस्कृत काव्य संग्रह, डॉ. मदन केवलिया (अप्रकाशित), भूमिका*
8. *राजस्थान की साठोतरी हिन्दी कहानी, डॉ. मदन केवलिया, पृ. 23*
9. *राजस्थान साहित्यकार प्रस्तुति : डॉ. मदन केवलिया, पृ. 16*
10. *निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, भूमिका से*
11. *बिखरना कविता, 'वक्त भी हैरान है', काव्य संग्रह, डॉ. मदन केवलिया (अप्रकाशित), पृ. 5*
12. *संत्रास कविता, 'वक्त भी हैरान है', काव्य संग्रह, डॉ. मदन केवलिया, पृ. 22*
13. *चेहरा कविता, 'वक्त भी हैरान है', काव्य संग्रह, डॉ. मदन केवलिया, पृ. 7*
14. *दिल कविता, 'वक्त भी हैरान है', काव्य संग्रह, डॉ. मदन केवलिया, पृ. 26*
15. *मुखौटे कविता, 'वक्त भी हैरान है', काव्य संग्रह, डॉ. मदन केवलिया, पृ. 13*
16. *जिंदगी कविता, 'वक्त भी हैरान है', काव्य संग्रह, डॉ. मदन केवलिया, पृ. 3*
17. *राजस्थान के हास्य–व्यंग्यकार, सं. डॉ. मदन केवलिया, भूमिका से*
18. *राजस्थान के हास्य–व्यंग्यकार, सं. डॉ. मदन केवलिया, भूमिका से*
19. *डुमडुमी पत्रिका, वार्षिक, भरतपुर, 1999*
20. *मधुमती पत्रिका, फरवरी, 1981, पृ. 12*
21. *जागरूक पेंशनर, नवम्बर, 1999, पृ. 4*
22. *साहित्यकार प्रस्तुति, डॉ. केवलिया, पृ. 20*
23. *मधुमती पत्रिका, फरवरी, 1981, पृ. 12*
24. *साहित्यकार प्रस्तुति, डॉ. केवलिया, पृ. 20, जब कभी कविता, 'वक्त भी हैरान है', काव्य संग्रह, डॉ. मदन केवलिया, पृ. 37*